राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक धार्मिक सुधार

संतोष कुमार राय
शोधार्थी
स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग
ल0ना0मि0वि0, दरभंगा।

प्रत्येक आंदोलन अपनी सामाजिक स्थितियों, उसमें सक्रिय विभिन्न शक्तियों के टकराव उनके अंतर्विरोधों तथा उन अंतर्विरोधों के चरित्र का परिणाम होता है। इसलिए किसी भी आंदोलन के सामाजिक धार्मिक आधार को समझे बिना उस आंदोलन का मूल चरित्र समझने में तमाम तरह की कटिनाइयाँ सामने आती हैं। यह जितना किसी और आंदोलन के बारे में सही है, उतना ही भारतीय राष्ट्रीय जागरण के बारे में भी सही है। भारतीय राष्ट्रीय जागरण या नवजागरण कोई एक धारा नहीं हैं। यह अनेक धाराओं का संगम है। इसमें जितनी धाराएँ है सबकी दिशाएँ भी एक नहीं हैं। कहीं–कहीं तो वे एक दूसरी की विरोधी भी लगती हैं। इन सब बातों के गहरे सामाजिक कारण हैं। इन कारणों को समझे बिना राष्ट्रीय चेतना के मूल चरित्र को पहचानने मेंअनेक तरह की कठिनाईयाँ आती हैं। अनेक मुद्दों पर इतिहासकारों और विद्वानों में मतभेद दिखाई पड़ते है क्योंकि जिस भारतीय समाज में राष्ट्रीय चेतना की घटनाएँ घट रही थीं, उस समाज की रचना, उसके स्वरूप, उसके भीतर सक्रिय विभिन्नट वर्गों, उनकी जरूरतों में भारी भिननताएँ थी।

धार्मिक आस्थाओं और सामाजिक व्यवहारों के बीच अंतःसंबंध के कारण सामाजिक सुधार के लिए पहले धार्मिक सुधार जरूरी शर्त है। उस समय आम हिंदू के जीवन में हर क्षेत्र में धर्म का दखल होता था। उसका खाना–पीना, चलना–फिरना, उठना–बैठना सभी कुछ धार्मिक नियमों औरव्यवस्थाओं के तहत नियंत्रित और निर्धारित था। इन सब नियमों के उल्लंघन का मतलब था पाप और अधार्मिकता। ठीक यही बात मुसलमानों पर भी लागू होती थी। उनके जीवन के भी हर मामले में धर्म का पूरा दखल था। धर्म उससमय के समाज पर किस तरह हावी था, उसे देखते हुए यह बात साफ हो जाती है कि धर्म पर पकड़ बनाए बगैर किसी तरह का सामाजिक सुधार तब संभव नहीं था।“[1]

कुछ पश्चात्य विद्वान भारत के प्राचीन सांस्कृतिक वैभव से प्रभावित और सम्मोहित थे। इन विद्वानों ने इस बात को बार–बार कहा था कि भारत के वर्तमान और भावी निर्माण के लिए भारत के गौरवशाली अतीत को पुनरू प्राप्त करना होगा। लेकिन जो इस प्रकार से सोचते थे, भारत की तत्कालीनसामाजिक, आर्थिक और राजनीतक संस्थाओं के विकास में लोगों की कोई दिलचस्पी नहीं थी।“[2] इसलिए इस प्रकार के सुझावों तथा संस्तुतियों का अकादमिक महत्व तो माना जा सकता है लेकिन उनका कोई व्यवहारिक महत्व नहीं समझ में आता हैं। भारतीय विद्वानों में से भी कुछ इस दृष्टिकोण के समर्थक थे, हालांकि इन भारतीयों का तात्कालीन भारत की राजनीतिक–सामाजिक संस्थाओं से भारी सरोकार था।

उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आंदोलन का भारत के इतिहास में विशेष स्थान है। इसके बहुँमुखी स्वरूप और व्यापकता की दृष्टि से इस आंदोलन को संघर्षपूर्ण आधुनिक इतिहास में ही एक महत्त्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। इस आंदोलन ने भारत की तात्कालिक जड़ता को समाप्त किया और देश के जन–जीवन को झकझोर दिया। हमने जहाँ अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्मसम्मान और आत्मगोरव कीभावना जगाने की कोशिश की। धार्मिक उपदेशों के साथ–साथ आंदोलन के नेताओं ने स्वतंतत्रा और समानता का भी उपदेश दिया।[3]

सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों को प्रो.ए.आर. देसाई ने राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक माना उन्होंने इस परिपेक्ष्य में लिखते हुए कहते हैं कि श्श अंग्रेजी शासन के दिनों में भारत में समाज और धर्मसुधार संबंधी जो आंदोलन हुए थे, वे भारतीय जनता की उदीयमान राष्ट्रीय चेतना और उनकेबीच पश्चिम के उदारवादी" विचारों के प्रसार के परिणाम थे। इन आंदोलनों ने धीरे–धीरे सामाजिक और धार्मिक नवजागरण का कार्यक्रम अपनाया और सारा देश इस आंदोलन की चपेट में आया।

सामाजिक स्तर को सुधारने के लिए तात्कालिक भारत में अनेक प्रकार के आंदोलन चलाए गए, जैसे – जाति प्रथा को समाप्त करने के आंदोलन, बाल–विवाह को समाप्त करना, सती प्रथा को समाप्त करना, विधवा विवाह का समर्थन, स्त्रियों के लिए समानाधिकार, कानूनी और सामाजिक असमानता को समाप्त करने संबंधी आंदोलन।. धर्म सुधार को लेकर जो आंदोलन चलाए गए उनमें धार्मिक अंधविश्वास तथा मूर्तिपूजा का विरोध, बहुदेववाद का विरोध और वंशानुगत पुरोहितवाद का विरोध मुख्य थे। इन आंदोलनों ने कमोबेश मात्रा में व्यक्ति स्वातंत्र्य, सामाजिक एकता और राष्ट्रवाद के सिद्धांतों पर जोर दिया तथा उन सिद्धान्तों के लिए संघर्ष भी किया।[4]

राममोहन राय ने लिखा था : "मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि धर्म के वर्तमान ढाँचे ने हिन्दुओं को इस तरह जकड़ रखा है कि उनके राजनीतिक हितों के बारे में कुछ किया ही नहीं जा सकता। जाति–भेद और जातीय अभिमान ने उन्हें अनगिनत वर्गों और उपवर्गों में बाँट दिया है,जिससे उनमें देश–प्रेम की भावना ही पूरी तरह खत्म हो गई है। सैकड़ों तरह के धार्मिक समारोहों और शुद्धिकरण के नियम ने उन्हें इस कदम बांध रखा है कि वे कोई जोखिम का काम हाथ में लेने लायक रह ही नहीं गए हैं। इसलिए मेरे ख्याल से, अब जरूरी हो गया है कि हिंदू धर्म के स्वरूप मेंकुछ परिवर्तन लाए. जाएँ। कम–से–कम, हिन्दुओं के राजनीतिक और सामाजिक हितों के लिए तो ऐसा करना बेहद जरूरी है।"[5]

राममोहन राय के साथ अनेक सुधारकों का समाज को सुधारने में योगदान रहा हैं। इतिहासकारों में इन सुधारों के स्वरूप को लेकर काफी मतभेद हैं। सुधार आंदोलनों की विस्तृत पड़ताल करना तो यहाँ संभव नहीं है, इसलिए मुख्य–मुख्य बातों पर गौर किया जाएगा जिससे राष्ट्रीय चेतना की सामाजिक और धार्मिक अंतर्वस्तु को समझने में मदद मिल सके। उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय समाज को जिन सुधार आंदोलनों ने प्रभावित किया उनमें उल्लेखनीय नाम हैं, ब्रह्म समाज, यंग बंगालआंदोलन, वेद समाज,

प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल सोसाइटी। इनके साथ–साथ मुसलमानों में अलीगढ़ आंदोलन का विशेष महत्व हैं। इन आंदोलनों में मुख्य रूप से नारी मुक्ति जाति–प्रथाऔर छुआछूत को समाप्त करने का लक्ष्य था।

इन आंदोलनों का विवेचन करते हुए प्रो. बिपिन चन्द्र लिखते हैं कि ”इन सामाजिक–धार्मिक आंदोलनों के जरिए जो सांस्कृतिक–वैचारिक संघर्ष चला, उसने राष्ट्रीय चेतना को जन्म देने और उसके विकास में बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया क्योंकि शुरूआती दौर में इसने जो बौद्धिक और सांस्कृतिक जागरूकता पैदा की, उससे लोगों को भविष्य के प्रति नई दृष्टि मिली। दूसरे यह संघर्ष औपनिवेशिक संस्कृति और विचारधारा के हमले के प्रतिरोध के रूप में छेड़ा गया था। दो मोर्चों पर एक साथ चले इस संघर्ष ने आज की आधुनिक सांस्कृतिक स्थिति को जन्म दिया –“नए आदमी, नए परिवार और नया समाज।“[6]

के. दामोदरन भी इन आंदोलनों के चरित्र का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि ”ये आंदोलन, सैद्धांतिक दृष्टि से तत्ववादी, मध्ययुगीन तथा अवैज्ञानिक अवधारणाओं पर आधारित थे, फिर भी उनकी अंतर्वस्तु मूलतः सामंत विरोधीऔर उपनिवेशवाद विरोधी थी। वे जनता को सडे–गले सामाजिक संबंधों के खात्म के लिए कार्य करने और नए संबंधों और विचारों का सृजन करने के लिए प्रोत्साहित करते थे।“[7] यही कारण है कि इन्होंने इतिहास में एक सीमातक प्रगतिशील भूमिका अदा की यद्यपि इनमें प्रगति पर भी रोक लगी हुई थी और सीमा में यथार्थ के तर्कसंगत और वैज्ञानिक पर भी रोक लगी हुई थी व्यवहार में वे भविष्य की पुकार का एक प्रत्युत्तर थे यद्यपि वे समझते यह थे कि पुराने मूल्यों को पुनः शक्ति सम्पन्न कर रहे हैं।[8]

यूरोप का राष्ट्रीय जागरण हो या भारतीय राष्ट्रीय जागरण प्रत्येक राष्ट्रीय जागरण में अतीत की उपलब्धियों को बढ़ा–चढ़ाकर पेश करने की प्रवृत्ति विद्यमान है। यह बात भारतीय राष्ट्रीय जागरण में भी विद्यमान थी। यह प्रवृत्तिफ्रांसीसी नवजागरण और ब्रिटिश सुधार आंदोलन के समय का भी एक उल्लेखनीय लक्षण थी। भारत में भी नवजात राष्ट्रीय चेतना की राजनीतिक आर्थिक अंतर्वस्तु ने अपने को धार्मिक सुधार के रूप में अभिव्यक्त किया और उसका एक ऐसे राष्ट्रीय नवजागरण आंदोलन के रूप में विकास कियाजिसने प्रतिक्रियावादी सामाजिक शक्तियों के संरक्षण में प्रचलित पुराने सडे–गले रीति–रिवाजों और धार्मिक अंधविश्वासों को ठुकरा दिया।[9]

धर्म सुधार का प्रारंभ बंगाल से हुआ। राममोहन राय (1774–1833) ने इसकी शुरूआत की। इसी कारण राजा राममोहन राय को भारत के नवजागरण का अग्रदूत, सुधार आंदोलन का प्रवर्तक एवं आधुनिक भारत का पहला नेता माना जाता है। उन्होंने ब्रह् समाज की स्थापना कर धर्म सुधार एवं समाज सुधार का कार्य प्रारम्भ किया था। वे बहुदेववादी कर्मकांडों के विरोधी थे। समाज में प्रचलित अंधविश्वासों का उन्होंने जमकर विरोध किया। पश्चिमी विज्ञान द्वारा सृजित मूल्यों को आत्मसात करने और उन्हें भारत के परम्परागतमूल्यों से मिलाने का उन्होंने प्रयास किया ताकि नए युग की चुनौती का सामना किया जा सके। उन्होंने लिखा कि”मुझे यह कहते हुए दुःख हो रहा है कि हिंदू धर्म की जिस वर्तमान प्रणाली पर हम लोग चल रहे हैं, वह हमारे राजनीतिक हितों को बढ़ावा देने वाली नहीं है। जातपांत के भेदभावों ने,

जिन्होंने जनता को कितने ही छोटे– छोटे टुकड़ों में बांट रखा है, हमें राजनीतिक भावनाओं से शून्य कर दिया है। अनगिनत धार्मिक कर्मकांडों और पवित्रता संबंधी नियमों ने हमें किसी भी कठिन कार्य को उठाने में पूर्णतः अयोग्य बना दिया है। मेरा विचार है कि इस हिंदू धर्म में कुछ–न–कुछ परिवर्तन होना ही चाहिए, कम–से–कम इसलिए कि हमको राजनीतिक तौर से लाभ हो और जनता को सामाजिक सुख मिल सके।[10]

हेनरी विवियन डिरोजियो (1806–31) की अगुवाई में "यंग बंगाल" आंदोलन का जन्म हुआ। इस आंदोलन को प्रवृत्ति राममोहन राय के विचारों से भी अधिक आधुनिक और क्रांतिकारी थी। डिरोजियो के समर्थक आधुनिक पाश्चात्य विचारों से इतना प्रभावित थे कि हिंदू परम्परा संस्कृति में असंख्य दोष नजर आने लगे। इनके प्रभावों से मुक्ति के लिए वे लोग अतीत से पूर्ण रूप से विच्छेद करना चाहते थे।

पश्चिमी भारत में मुर्तिपूजा का विरोध, जाति–प्रथा का विरोध और विधवा विवाह का समर्थन का जिम्मा गोपाल हरि देशमुख ने उठाया। वे लोकहितबादी के नाम से विख्यात थे। इन कार्यों की शुरूआत 'परमहंस मंडली' की स्थापना से हुई। देशमुख धार्मिक और सामाजिक समानता के कट्टर समर्थक थे। ब्रह्म समाज के प्रभाव में आकर आगे चलकर यहाँ'प्रार्थना समाज' की स्थापना सन् 1876 में की गई।

उत्तर भारत में हिंदू धर्म तथा समाज सुधार का काम'आर्यसमाज' ने किया। इसके संस्थापक दयानंद सरस्वती थे। दयानंद सरस्वती ने राष्ट्रीय एकता की आवाज उठाई थी लेकिन उनकी राष्ट्रीय एकता अन्यों से भिन्न थी। उनकीराष्ट्रीयता का अर्थ था सभी भारतवासियों द्वारा वेदों की सत्ता और हिंदू धर्म का स्वीकृति।[11]

'अलीगढ़ आंदोलन' का सूत्रपात सैयद अहमद खाँ के नेतृत्व में हुआ। मुस्लिम समाज में इस आंदोलन से क्रांतिवादी परिवर्तन आये। सैयद अहमद धार्मिक सहिष्णुता और सभी धर्मों की अंतर्निहित एकता में विश्वास रखते थे। वे साम्प्रदायिक टकराव के विराधी थे उन्होंने 1883 में लिखा थाः "तत्काल हम दोनों (हिंदू और मुसलमान) भारत की हवा पर जिंदा है। हम गंगा और यमुना का पवित्र जल पीते है। हम दोनों भारतीय भूमि की पैदावार खाकर जीवित हैं। ...... हम दोनों एक ही देश के हैं, हम एक राष्ट्र के है और देश की प्रगति तथा भलाई हमारी एकता, पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है, जबकि हमारी पारस्परिक असहमति, जिद और विरोध तथा दुर्भावना हमारा विनाश निश्चित रूप से कर देगी।"[12]

धर्मिक सामाजिक सुधार आंदोलन की शायद सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने भारतीयों को समानता, स्वतंत्रता एवं जागरण का संदेश एक ऐसे समय पर दिया जब देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और समस्त जन–जीवन अंधविश्वास, रूढ़िवादिता एवं अज्ञान के अंधकार में भटक रहा था। इन सुधार आंदोलनों ने एक बौद्धिक आधार एवं अपूर्व मनोबल प्रदान किया।इस प्रकार सुधार आंदोलन भले ही देश में आधुनिक युग लाने में विफल रहा हो, पर निस्संदेह इसने देश को आजादी दिलाने में सहायता की।

संदर्भ ग्रंथ

1. बिपिन चंद्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, प्रकाशक हिंदी माध्यम कार्यन्वय, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 55–56
2. जेम्स एच. कजिन्स : दि रिनेसा इन इंडिया, मद्रास, 1637, पृ. 24–25
3. ए. आर. देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, नई दिल्ली : 1977, पृ. 191.
4. वही।
5. बिपिन चंद्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, प्रकाशक हिंदी माध्यम कार्यन्वय, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 54
6. बिपिन चंद्र : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, प्रकाशक हिंदी माध्यम कार्यन्वय, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 63
7. के. दामोदरन : भारतीय चिंतन परम्परा, नई दिल्ली– 1976, पृ. 362
8. वही।
9. वही।
10. राजाराव तथा इकबाल सिंह : चेजिंग इंडिया, पृ. 18
11. के. दामोदरन : भारतीय चिंतन परम्परा, नई दिल्ली– 1976, पृ. 362
12. वही।